संशोधनाधीन, बिना अनुमति के उपयोग न करें

ओमप्रकाश कश्यप

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे के बालउपन्यास

हिंदी बालसाहित्य पर पहला शोधप्रबंध, प्रथम पांक्तेय संपादक, प्रथम पांक्तेय आलोचक तथा प्रथम पांक्तेय रचनाकार. बालसाहित्यकार कहलवाने में जरा-भी हिचकिचाहट नहीं. जब और जहां भी अवसर मिले बालसाहित्य में नई परंपरा की खोज के लिए सतत आग्रहशील. पचास से अधिक वर्षों से अबाध मौलिक लेखन. कई दर्जन पुस्तकें. उत्कृष्ट पत्रकारिता. संपादन, समालोचना और अनुवादकर्म. कुल मिलाकर बालसाहित्य के नाम पर अपने आप में एक संस्था, एक शैली, एक आंदोलन. उस जमाने में जब बालसाहित्य अपनी कोई पहचान तक नहीं बना पाया था, लोग उसे दोयम दर्जे का साहित्य मानते थे, अधिकांश साहित्यकार स्वयं को बालसाहित्यकार कहलवाने से भी परहेज करते (यह स्थिति कमोबेश आज भी है); और जब बच्चों के लिए लिखना हो तो अपना ज्ञान, उपदेश और अनुभव-समृद्धि का बखान करने लगते थे, उन दिनों एक बालपत्रिका की संपादकी के लिए जमी-जमाई सरकारी नौकरी न्योछावर कर देना. फिर बच्चों की खातिर हमेशा-हमेशा के लिए कलम थाम लेना. परंपरा का न अतार्किक विरोध, न अंधसमर्पण. जो जी को जमे, वह कहना-रचना, लिखते जाना और लिखते ही जाना.

वे हिंदी के उन विरले साहित्यकारों में से हैं, जो बालसाहित्य को बंधे-बंधाए ढांचे से बाहर लाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे हैं. इसके लिए उन्होंने लोगों का विरोध सहा और आलोचनाएं भी. हिंदी बालसाहित्य आज यदि थोड़ा भी प्रबुद्ध हुआ है, उपदेशों एवं परिकथाओं के परंपरागत ढांचे से जरा-भी बाहर आ पाया है, यदि उसमें थोड़ी भी तर्कशीलता और नएपन के प्रति आग्रह है—तो इसके पीछे उनका योगदान कम नहीं है. डॉ. प्रकाश मनु जब उन्हें बालसाहित्य का भीष्म पितामह कहते हैं, तब हमें उनके शब्दों पर सहसा विश्वास न हो, किंतु जब उनके पचास साल से लंबे रचनाकाल और उसके दौरान सृजित विपुल वांङ्मय को देखते हैं, तो मन में छिपा संदेह चारों खाने चित्त हो जाता है. अपने लंबे लेखनकाल के दौरान उन्होंने न केवल रचनात्मक लेखन में अपनी सार्थक उपस्थिति बनाए रखी, बल्कि आलोचना एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपने वर्चस्व को कायम रखा. हिंदी बालसाहित्य में एक दौर ऐसा भी आया जब परीकथाओं, जादू-टोने एवं भूत-प्रेत की कहानियों की प्रासंगिकता को लेकर एक जोरदार बहस छिड़ी हुई थी. एक पक्ष परंपरा तथा संस्कृति के नाम पर यथास्थितिवाद का समर्थक था, दूसरा आधुनिक युगबोध एवं तार्किकता को परंपरा एवं सांस्कृतिक प्रतीकों के लिए कसौटी बनाना चाहता था. ऐसे में बौद्धिक जड़ता का सतत विरोध, परंपरा का पुनः पुनः अन्वेषण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, कल्पना का नया मायालोक, अद्भुत पठनीयता—ये सभी खूबियां यदि हिंदी के किसी एक बालसाहित्यकार में खोजनी हों तो उसके लिए ज्यादा मेहनत की जरूरत नहीं पड़ती. एक नाम झट से मनस् में उभरता है और फिर दिलो-दिमाग पर तेजी से छाने लगता है. जी हां, वह नाम है— डॉ. हरिकृष्ण देवसरे!

डॉ. देवसरे ने बालसाहित्य की लगभग हर विधा में लिखा. हर क्षेत्र में अपनी मौलिक विचारधारा की छाप छोड़ी. लुभावनी परिकल्पनाएं गढ़ीं. मगर उनकी छवि बनी एक वैज्ञानिक सोच, बालसाहित्य के नाम पर परीकथाओं और जादू-टोने से भरी रचनाओं के विरोधी बालसाहित्यकार की. ऐसा भी नहीं है कि वे बालसाहित्य की पुरातन परंपरा को पूरी तरह नकारते हों. परीकथाओं की मोहक कल्पनाशीलता से उन्हें जरा-भी मोह न हो. उनकी सहजता और पठनीयता उन्हें लुभाती न हो. वस्तुतः वे परंपरा के नाम पर भूत-प्रेत, जादू-टोने, तिलिस्म जैसी अतार्किक स्थापनाओं, इनके आधार पर गढ़ी गई रचनाओं का विरोध करते हैं. वे उस फंतासी को बालसाहित्य से बहिष्कृत कर देना चाहते हैं, जिसका कोई तार्किक आधार न हो. जो बच्चों को भाग्य के भरोसे जीना सिखाए, चमत्कारों में उनकी आस्था पैदा करे, जीवन-संघर्ष में पलायन की शिक्षा दे. परीकथाओं में वे वैज्ञानिक दृष्टि के पक्षधर है. ऐसी परीकथाओं के समर्थक हैं, जो परंपरा का अन्वेषण करती, बालमन में नवता का संचार करती हों. जो बच्चे की जिज्ञासा को उभारें, उनकी कल्पनाओं में नूतन रंग भरें. जिनके लिए गिल्बर्ट कीथ चेटरसन ने कहा था कि—*परिकथाओं में व्यक्त कल्पनाशीलता सत्य से भी बढ़कर हैं, इसलिए नहीं कि वह हमें सिखाती हैं कि राक्षस को खदेड़ना संभव है, बल्कि इसलिए कि वे हमें एहसास दिलाती हैं कि दैत्य को दबोचा भी जा सकता है.'*

इस संबंध में डॉ. देवसरे का सोच चार्ल्स डिकेन्स (1812 - 1870) और हेंस क्रिश्चन एंडरसन (1805 -1875) से मेल खाता है. यह उल्लेख प्रासंगिक होगा कि ये दोनों ही लेखक यूरोपीय नवजागरण से प्रभावित थे. अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने समाज में एक वैज्ञानिक और यथार्थवादी सोच निर्मित करने का कार्य किया था। चार्ल्स डिकेन्स ने अपने उपन्यासों में इंग्लेंड के समाज की आर्थिक एवं सामाजिक विकृतियों को बड़े ही स्वाभाविक अंदाज में, व्यंजना के माध्यम से उभारा. अपने उपन्यास 'दि क्रिसमस कैरोल' में डिकेन्स ने 'स्क्रूज' नामक कंजूस महाजन की कुटिलताओं का इतने सहज-स्वाभाविक ढंग से चित्रण किया कि आगे चलकर 'स्क्रूज' शब्द महाकंजूस का पर्याय मान लिया गया. डिकेन्स से प्रभावित एंडरसन ने बालसाहित्य को प्राथमिकता दी. उन्होंने परंपरा से कही-सुनी जाने वाली परीकथाओं को आधुनिक युगबोध से जोड़ा. समाज में आत्मालोचन की प्रवृत्ति जाग्रत की. यह सब उसने इतने सहज और

स्वाभाविक अंदाज में किया कि आगे चलकर उसको बालसाहित्य के क्षेत्र में नव्यता और वैज्ञानिकता का पर्याय मान लिया गया. एंडरसन की प्रसिद्ध कहानियों में राजा की नई पोशाक, माचिस वाली लड़की, टिन का सिपाही, दि नाइटेंगिल आदि प्रमुख हैं. एंडरसन की परंपरा को विस्तार देते हुए डॉ. देवसरे ने भी आधुनिक युगबोध एवं वैज्ञानिकता से भरपूर बालकहानियों की रचना की. सतत-सारगर्भित लेखन के बाद वे बालसाहित्य के बंधे-बंधाए ढर्रे को तोड़ने में कामयाब भी हुए, जिसकी स्वतंत्र भारत में अत्यधिक आवश्यकता थी. उनका पूरा लेखन बच्चों की प्रश्नाकुलता को उभारने की लेखकीय छटपटाहट का सुफल है. इसके लिए उन्होंने एंडरसन की चुनींदा कहानियों का अनुवाद भी किया, जो साहित्य अकादमी से प्रकाशित हुआ. पाठकों के बीच वह विशेषरूप से सराहा भी गया. हिंदी को देवसरे जी का यह अवदान इसलिए भी अनूठा है कि कतिपय पूर्वाग्रहों के चलते रूस और अन्य साम्यवादी देशों से जितना अनूदित साहित्य हिंदी में आया, उतना यूरोपीय देशों से नहीं आ पाया. जबकि समाजवाद और पूंजीवाद की भांति साम्यवाद भी यूरोपीय नवजागरण की ही उपज था, रूस में तो उसका परिवर्तनकारी राजनीति के लिए उपयोग किया गया था.

डॉ. देवसरे ने अपने ऊपर लगाए गए परीकथाओं के विरोधी होने के आरोपों को बड़ी सहजता से लिया. इस संबंध में यह उल्लेख प्रासंगिक होगा कि रोचकता एवं कल्पनाशीलता के नाम पर बालसाहित्य में जादू-टोने और अंधविश्वास से भरी रचनाओं/परिकथाओं की उपस्थिति आज की बात नहीं है. न ऐसा केवल भारतीय समाज में हुआ है. बल्कि हर समाज में ऐसी कहानियां बुनी जाती रही हैं, जिनका असल जिंदगी से कोई वास्ता ही न हो. वस्तुतः किसी ठहरे हुए समाज में, ऐसे समाज में जो सैकड़ों वर्षों से पराधीनता से गुजरा हो, अशिक्षा का जहां साम्राज्य हो, वहां चमत्कारों के प्रति मोह जाग्रत होना अस्वाभाविक नहीं है. लंबे मुक्तिकामी संघर्ष में कभी-कभी ऐसा दौर भी आता है, जब व्यक्ति या समाज हताशा में डूबने लगता है. वह खुद को हारा-थका महसूस करता है. उस अंतराल में उसका जीवन-दर्शन अतीतोन्मुखी बन जाता है. अपने समय से पलायन करते हुए वह चमत्कारों में जीने लगता है. जादू-टोने, तिलिस्म, परीकथाएं यानी तर्कविहीन फंतासी ऐसे ही समय में लोकचेतना पर सवार हो जाती है. कई बार बाजार और दूसरी शक्तियां जिन्हें चैतन्य जनमानस से डर लगता है, जो नहीं चाहतीं कि लोगों में स्वविवेक जाग्रत हो, वे अपने घुटनों के बल खड़े होना सीखें. लोगों को भरमाने के लिए परीकथाओं, जादू-टोने, तंत्र-मंत्र, आडंबरवाद और तिलिस्म को बढ़ावा देने लगते हैं, ताकि वह एक कल्पनाजगत में रमा रहे. अपनी समस्याओं के लिए भाग्य को दोष दे, समाधान के लिए चमत्कारों की आस जोहे. और समस्याओं के मूल कारकों के प्रति उसका ध्यान ही न जाए. इससे साहित्य का उद्देश्य जो बच्चों को जिज्ञासा करना सिखाता है, जिसकी ओर मेडेलीन एल'एंजल ने इंगित किया था कि; *मुझे हमेशा यह विश्वास रहा है कि अच्छे प्रश्न उत्तर की अपेक्षा सदैव महत्त्वपूर्ण होते हैं. बच्चों की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक वही है, जो उन्हें प्रश्न करना सिखाती हो. हर नया प्रश्न इस ब्रह्माड में किसी न किसी को उद्वेलित करता है*— बहुत पीछे छूट जाता है. बालक एक ऐसी रूमानी दुनिया में जीने लगता है, जिसका वास्तविक जीवन से कोई संबंध ही नहीं होता. ऐसे भटकावग्रस्त मानस को गैरजरूरी उपभोग में उलझाए रखकर उसके माध्यम से बड़ी आसानी से उल्लू सीधा किया जा सकता है. इन चालों को डॉ. देवसरे ने समय रहते भांपा और एक जागरूक कलमकार का धर्म निभाते हुए अपने सधे लेखन द्वारा बच्चों को उससे सावधान करते रहे. इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उनकी रचनाओं में उपदेशों की भरमार है. वस्तुतः साहित्यकार का काम यह बताना नहीं है कि क्या अच्छा है; और क्या बुरा, बल्कि यह अभ्यास कराना है कि बुद्धि एवं भावना में तालमेल कैसे बनाया जाए, जिससे वह चुनौतीपूर्ण स्थितियों में निर्णय ले सके. एक चुका हुआ रचनाकार ही अपनी रचना में उपदेशक की भूमिका निभाता है. डॉ. देवसरे की रचनाओं में बहुत कुछ ऐसा है, जो ज्ञानवर्धक है. उनमें बौद्धिकता के प्रति आग्रहशीलता तो है, पर उसका दबाव कहीं नहीं है. इसलिए बालक उन्हें पढ़ता है और जुड़ता चला जाता है.

वस्तुतः परीकथाओं की लोकप्रियता का एक कारण उनकी गजब की पठनीयता है, जो उनके आलोचकों को भी सम्मोहित किए रहती है. पूरी दुनिया के बालसाहित्य में परीकथाओं का आगमन लोकसाहित्य के रास्ते हुआ और वे वर्षों तक बच्चों एवं बड़ों को लुभाती रहीं हैं. हिंदी की एक बड़ी बालपत्रिका तो वर्षों तक इन्हीं की कमाई खाती रही. डॉ. देवसरे ने परीकथाओं के नाम पर व्याप्त एकरसता, बौद्धिक जड़ता, टोटमवाद का न केवल विरोध किया, बल्कि उनके समानांतर वैज्ञानिक गल्प, तर्क और यथार्थ पर आधारित फंतासी-युक्त रचनाओं पर जोर दिया. वैज्ञानिक कल्पनाओं के आधार पर उन्होंने स्वयं भी सैकड़ों मौलिक कहानियां और उपन्यास लिखे. पराग का संपादन किया तो वहां भी बिना किसी समझौते के बच्चों को आधुनिक युगचेतना से जुड़ी रचनाएं परोसते रहे. उनकी एक बहुत पुरानी पुस्तक याद आती है, 1968 में प्रकाशित इस पुस्तक का शीर्षक है—*खेल बच्चे का.* इसमें उन्होंने वैज्ञानिक आविष्कारों से जुड़ी 09 कहानियां दी हैं. इनमें वैज्ञानिकों के बचपन के दौरान खेल-खेल में ली गई प्रेरणाओं के आधार पर सरल भाषा में कथानक बुने गए हैं. यह उनकी संभवतः सबसे पहली पुस्तक है, जिसमें उन्होंने विज्ञान के प्रति अपनी रुचि को प्रकट किया है. जिसने आगे चलकर उन्हें बालसाहित्य का शिखरपुरुष बनाने में मदद की. इस पुस्तक में *खेल लैंप का*(लैंप को हिलते देख घड़ी के पेंडुलम की खोज की प्रेरणा, गैलीलियो), *खेल केतली का*—जेम्स वॉट, *खेल घोड़े का*—मोशिए-दि-सिवरॉक, साइकिल आदि कुल नौ आविष्कारों की प्रारंभिक प्रेरणाओं के बारे में बड़े ही रोचक और पठनीय कथानक के माध्यम से बताया गया है. यह दर्शाती है कि एक लेखक के रूप में उन्होंने प्रारंभ से ही बच्चों के लिए विज्ञान लेखन को अपनाया और उसपर दृढ़तापूर्वक डटे भी रहे. यह प्रतिबद्धता उनके साहित्यकार को ऊंची उठान देती है.

*

डॉ. देवसरे ने बालसाहित्य के क्षेत्र में <u>दो सौ से भी अधिक पुस्तकों</u> की रचना की है. उपन्यास, कहानी, निबंध, लेख, आलोचना,

संपादन और पत्रकारिता यानी बालकविता को छोड़कर कोई ऐसा क्षेत्र नहीं हैं, जहां उन्होंने अपने मौलिक लेखन की छाप न छोड़ी हो. पराग के संपादक के रूप में उनका कार्यकाल बालपत्रकारिता के आदर्श को सामने रखता है, तो एक रचनाकार के रूप में वे अपने लेखन में अप्रतिम विविधता को बनाए रखते हैं. अनुवादक के रूप में उन्होंने हेंस एंडरसन और ग्रिम बंधुओं की रचनाओं को भारतीय पाठकों के लिए सुलभ बनाया. यानी बालसाहित्य के क्षेत्र में उनका रचनात्मक अवदान इतना विशद् और बहुआयामी है कि उसे लेकर हर विधा में स्वतंत्र पुस्तक की रचना की जा सकती है. किंतु इस आलेख की सीमाओं को देखते हुए हम इस विमर्श को सिर्फ उनके उपन्यासों तक सीमित रखेंगे.

डॉ. देवसरे ने पचास से अधिक बालउपन्यासों की रचना की है, कथानक की दृष्टि से उन्हें हम मुख्यतः चार श्रेणियों में बांट सकते हैं—

- सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास
- ऐतिहासिक उपन्यास
- जीवनीपरक उपन्यास
- वैज्ञानिक दृष्टि को लेकर रचे गए कथानक

डॉ. देवसरे के अधिकांश बालउपन्यास हालांकि वैज्ञानिक दृष्टि को लेकर रचे गए कथानक पर आधारित है. लेकिन सामाजिक समस्याओं को भी उन्होंने अपने लेखन का विषय बनाया है. शिक्षा के तनाव, डाकू समस्या, इतिहासबोध आदि अनेक ऐसे विषय हैं, जहां उन्होंने अपने लेखन से साहित्य को समृद्ध किया है. पूर्णतः निर्लिप्त भाव से और बच्चों के मनःरंजन को ध्यान में रखते हुए, जो कि किसी भी साहित्यकार का अभीष्ट होता है. 1984 में प्रकाशित 'डाकू का बेटा' उनका श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास है, जिसमें रोचकता और सोद्देश्यता का बेहतरीन तालमेल है. उपन्यास का मुख्य पात्र है, चंदन. उसके पिता डाकू हैं. इस कारण चंदन को सब चिढ़ाते हैं. पढ़ाई-लिखाई में अव्वल रहकर भी चंदन का उसमें मन नहीं रमता. आहत होकर वह एक दिन डाकुओं के नाश का संकल्प लेकर अपने साथियों के साथ निकल जाता है. अपने साहस एवं शौर्य के बल पर वह अपने पिता और उनके दल के सभी डाकुओं का हृदय-परिवर्तन करने में कामयाब होता है. कहानी को पढ़ते समय आचार्य विनोबा भावे एवं जयप्रकाश नारायण द्वारा चलाए गए डाकू उन्मूलन कार्यक्रमों की बरबस याद दिला जाती है. साथ में यह भी संकेत करती है कि भटकावग्रस्त लोगों को उनके परिजन भी नई राह दिखा सकते हैं, जरूरत राष्ट्र और समाज को निजी हितों के समान वरीयता देने की है.

साहित्य में ऐतिहासिक विषयों को लाना बहुत ही चुनौतीपूर्ण होता है. क्योंकि उपलब्ध इतिहास का अधिकांश हिस्सा किसी न किसी के पूर्वाग्रह की उपज होता है. वस्तुतः समाज की शीर्षस्थ शक्तियां अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों के साथ छेड़छाड़ करती रहती हैं. निहित स्वार्थ के लिए वे इतिहास और ऐतिहासिक तथ्यों को मनमाने ढंग से गढ़ने का प्रयास करती हैं. इस प्रक्रिया में समाज के वास्तविक नायकों को उनके किए का लाभ नहीं मिल पाता. स्वार्थी शक्तियां उन्हें पदच्युत कर उनके स्थान पर नकली नायकों को स्थापित करने का काम करती हैं. इससे न केवल वास्तविक नायक श्रेय ये वंचित रह जाते हैं, बल्कि समाज की मूल्य परंपरा में भी विचलन आने लगता है. ऐसे में साहित्यकार निष्पक्ष विवेचक की भूमिका निभाकर समाज का ध्यान उन तथ्यों की ओर खींचता है, जिन्हें स्वार्थी शक्तियों द्वारा जानबूझकर दबाया जा चुका है. भिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर रचे गए ऐतिहासिक प्रसंगों की छानबीनकर वह उनमें से सत्य की मणियां खोज निकालता है, कुछ इस तरह कि उसमें किस्सागोई का अंदाज और इतिहास की प्रामाणिकता पूरी तरह घुलमिल जाएं. यह एक चुनौती भरा कार्य है, क्योंकि इसके लिए साहित्यकार को कलम के साथ-साथ वास्तविक धरातल पर भी जूझना पड़ सकता है. इस कसौटी पर भी देवसरे जी के बालउपन्यास एकदम खरे उतरते हैं.

ऐतिहासिक उपन्यासों के चयन के समय डॉ देवसरे की दृष्टि इतिहास के भूले-बिसरे पात्रों, लोकनायकों को मुख्यधारा का हिस्सा बना देने की है. यह कार्य वे बच्चों के मानस में उनके उच्चादर्श, बहादुरी, वीरता, उदारता, संकल्पनिष्ठा, सचाई और ईमानदारी से ओत-प्रोत चरित्र की स्थापना के माध्यम से करना चाहते हैं. आल्हा-ऊदल, शोहराब-रुस्तम......? उनके ऐसे ही उपन्यास हैं. उल्लेखनीय है कि बड़े कथानकों को उपन्यास में ढालना भी किसी चुनौती से कम नहीं होता. रचनात्मकता में जरा-सी शिथिलता कथानक को उबाऊ एवं बनावटी बना देती है. यह डॉ. देवसरे की सिद्धहस्तता ही है, जो वे इन महान गाथाओं को बालउपन्यास के रूप में प्रस्तुत कर पाए हैं. उन्हें पढ़ते हुए बालक इतिहास के महानायकों से रू-ब-रू होने लगता है. सहज प्रस्तुति उसे लुभाती है. संक्षेप में ये उपन्यास लघुता में विराटता, सरलता में गांभीर्य की सृष्टि हैं.

तीसरी श्रेणी में उनके जीवनीपरक उपन्यास आते हैं. बच्चे निःसंदेह महापुरुषों के जीवनचरित से प्रेरणा ग्रहण करते हैं. उनके जीवन के उदात्त गुण उसको अपनी ओर आकर्षित करते हैं, जिससे वे उनके जैसा बनना चाहते हैं. डॉ. देवसरे ने ऐसे ही आदर्श व्यक्तियों के जीवनचरित को अपनी लेखनी से अभिव्यक्ति प्रदान की है. यहां भी भाषा सहज-सरल है और शैली रवानगी से भरी हुई. महात्मा गांधी, भगत सिंह जैसे प्रेरक व्यक्तित्वों के जीवन-चरित को पूरी प्रामाणिकता के साथ बालोपयोगी कथानक में ढालना, वह भी इस तरह कि उसकी प्रभावोत्पादकता को जरा भी आंच न आए, वह ज्यों की त्यों बनी रहे, बहुत ही श्रमसाध्य कार्य है, जिसके लिए अनुभव और बालमानस की परख अनिवार्य है. डॉ. देवसरे ने बड़ी ही सहजता से इस साहित्यधर्म का निर्वाह किया है. वे इन महापुरुषों के जीवनमूल्यों को उपदेश की भांति व्यक्त नहीं करते, बल्कि उन कार्यों पर जोर देते हैं, जो उन महापुरुषों ने अंजाम दिए और जिनके

कारण पूरा समाज खुद का उनका ऋणी अनुभव करता है.

डॉ. देवसरे के विज्ञान उपन्यासों पर बात करने के लिए कुछ ठहरना पड़ेगा. दरअसल यही ऐसा क्षेत्र जिसको वे बालकों के लिए अपरिहार्य मानते हुए पिछले चालीस वर्षों से एक आंदोलन के रूप में लेते आए हैं. गौर से देखा जाए तो उनका सोच और आधुनिक हिंदी बालसाहित्य की अवधारणा इस मोड़ पर आते-आते एकमेव हो जाते हैं. चाहे परंपरागत रूप से लिखी जा रही परिकथाओं की आलोचना का मामला हो या विज्ञानकथाओं के समर्थन का—यह एक ऐसा विषय है, जिसके बारे में डॉ. देवसरे की राय एकदम स्पष्ट है. इतनी कि इस मुद्दे पर कुछ लोग उन्हें अतिवादी भी कहें तो वे परवाह नहीं करते. इसलिए पिछले पचास वर्ष से अपने हर लेख, हर मंच और अपनी रचनाओं के माध्यम से वे बच्चों के लिए विज्ञानलेखन के प्रति आग्रहशीलता दर्शाते रहे हैं. न केवल वैचारिक स्तर पर, बल्कि रचनात्मकता के स्तर पर भी. पराग के संपादन के दिनों में भी उन्होंने इसी परिपाटी को बनाए रखा था. यहां स्मरणीय है कि बच्चों के विज्ञान लेखन का दायित्व डॉ. देवसरे ने उस समय उठाया जब लोग बालसाहित्यकार होने से भी कतराते थे. बच्चों में विज्ञान के प्रति अभिरुचि जगाने के लिए उन्होंने स्वयं इतना अधिक लिखा कि हम चाहें तो इसी आधार पर उन्हें बच्चों के लिए विज्ञानसाहित्य लेखन का पितामह कह सकते हैं. आाज इस क्षेत्र में उनका अनुसरण करने वाले दर्जनों बालसाहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने लेखन में वैज्ञानिक विषयों को प्रधानता दी है. परंतु विज्ञानलेखन को सर्वप्रथम गंभीरता से लेने वाले वे अकेले हैं—मील के पहले पत्थर, प्रथम दीपस्तंभ जैसे. उनका आधे से अधिक बालसाहित्य, जिसमें उनके बालउपन्यास भी सम्मिलित हैं, विज्ञान-साहित्य की श्रेणी में आता है. उन्होंने दो दर्जन से अधिक विज्ञान उपन्यास लिखे हैं, जिनमें दूसरे ग्रहों के गुप्तचर, मंगलग्रह में राजू, उड़ती तश्तरियां, आओ चंदा के देश चलें, स्वान यात्रा, लावेनी आदि प्रमुख हैं. कुछ महीने पहले उनका नया उपन्यास 'घना जंगल डॉट काम' भी चर्चा में रहा था.

इस संदर्भ में आगे चर्चा से पहले विज्ञान-साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट कर लेना प्रासंगिक होगा. यह जान लेना उचित होगा कि आखिर विज्ञान उपन्यास हैं, क्या? कि वह कौन-सा गुण है तो तथाकथित विज्ञान साहित्य को सामान्य साहित्य से अलग कर, उसे विशिष्ट पहचान देता है? और किसी साहित्य को विज्ञान साहित्य की कोटि में रखने की कसौटी क्या हो? कि क्या केवल वैज्ञानिक खोजों, उपकरणों, आधुनिकतम तकनीक और आविष्कारों को केंद्र में रखकर कथानक बुन देना ही विज्ञानसाहित्य है. क्या किसी भी निराधार परिकल्पना को विज्ञानलेखन का प्रस्थानबिंदु बनाया जा सकता है? क्या वैज्ञानिक तथ्य से परे भी विज्ञान साहित्य या वैज्ञानिक फंतासी की रचना संभव है? जीवन में विज्ञान जितना जरूरी है, वह तो बच्चे अपने पाठ्यक्रम के हिस्से के रूप में पढ़ते ही हैं. वस्तुतः विज्ञान एक खास दृष्टिबोध, एक विशिष्ट अध्ययन पद्धति है, साहित्य और साहित्यकार दोनों का लक्ष्य बच्चों के मनस् में वैज्ञानिकबोध का विस्तार करना है. ताकि वे अपने आसपास की घटनाओं का अवलोकन वैज्ञानिक प्रबोधन के साथ कर सकें. विज्ञान के प्रति अतिरिक्त आकर्षण वस्तुतः कहीं न कहीं बाजारवाद से भी प्रेरित है. क्योंकि पूंजीपतियों के दम पर चलने वाले वैज्ञानिक शोधों तथा प्रौद्योगिकीय समृद्धि का सर्वाधिक जोर मानव जीवन को सुविधामय बनाने के लिए होता है और सुविधाएं व्यक्ति को उत्तरोत्तर आत्मकेंद्रित बनाती चली जाती है. जहां शुरुआत में ऐसा न हो वहां पूंजीपति नवीनतम तकनीक को खरीद कर अपने हितों के अनुकूल ढालने लग जाते हैं. बावजूद इसके इस तथ्य से मुंह फेर लेना भी असंभव होगा कि कि समाज को रूढ़िवादिता, जादू-टोने, भूत-प्रेत आदि के मायाजाल से बाहर रखने के लिए पिछली कुछ शताब्दियों से विज्ञान की बहुत बड़ी भूमिका रही है.

बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि उसको उसकी वय के अनुसार समाज एवं मानवजीवन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी उपलब्ध कराई जाए. यह कार्य पाठशाला में शिक्षा के माध्यम से भी किया जाता है. मगर शिक्षा का एक दो बंधा-बंधाया ढांचा दूसरे उसमें सीखने का दबाव बच्चे को के मन में तनाव का सृजन करते हैं, जिससे शिक्षा को लेकर उसके मन में एक अरुचि बन जाती है. साहित्य उसके मनोरंजन एवं शिक्षण का दायित्व संभालता है, मगर वह बालक को यह एहसास नहीं होने देता कि उसपर सीखने का दबाव है. शिक्षा के रूप में ज्ञानविज्ञान के जो भी रूप विद्यार्थी को पढ़ाए जाते हैं, अथवा जिनके लिए अपेक्षा की जाती है कि वह उन्हें पढ़े आत्मसात करे, उनका पढ़ाने का ढंग बहुत ही वस्तुनिष्ठ होता है. ऐसा कि विद्यार्थी और विषय का कोई संबंध जुड़ ही नहीं पाता. कई बार पाठ्यक्रम के आधार पर बच्चे के ऊपर ऐसे विषय थोप दिए जाते हैं, जो उसकी रुचि से बाहर हों. अथवा जिन्हें उसकी अपरिपक्व मेधा पकड़ ही नहीं पा रही हो. साहित्यकार वैज्ञानिक तथ्यों का सामान्यीकरण कर उनके और बालमन के बीच तालमेल बिठाने का काम करता है. वह बालक को अपने आसपास की घटनाओं से जोड़ने की जिम्मेदारी निभाता है, ताकि उसकी जिज्ञासा बलवती हो. बालक में कुछ सीखने की ललक जगाए.

वस्तुतः विज्ञान लेखन की कसौटी उसका सैद्धांतिक आधार है. दूसरे शब्दों में फंतासी का आधार किसी वैज्ञानिक सिद्धांत अथवा ऐसी परिकल्पना को होना चाहिए जो अब तक के वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर गढ़ी गई हो. वैज्ञानिक तथ्यों को समझे बिना विज्ञान फंतासी का कोई औचित्य नहीं बन सकता. क्योंकि अक्सर यह देखा गया है कि विज्ञान के किसी आधुनिकतम उपकरण अथवा नई खोज को आधार बनाकर उत्साही लेखक रचना गढ़ देते हैं. लेकिन उसको विज्ञान साहित्य का दर्जा दिलाने के लिए जो स्थितियां गढ़ी जाती हैं, उनका विज्ञान के किसी सिद्धांत अथवा तर्काधारित परिकल्पना जैसा कोई आधार ही नहीं होता. न ही लेखक अपनी रचना के माध्यम से सृष्टि के किसी रहस्य पर वैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन ही करना चाहता है. ऐसी अवस्था में पाठक को चामत्कारिता के अलावा और कुछ मिल ही नहीं पाता. यह चामत्कारिता परीकथाओं या जादूटोने के आधार पर रची गई रचनाओं जैसी

ही होती है. ऐसी रचनाएं उतना ही भ्रम फैलाती हैं, जितना कि गैर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर रची गई फंतासी, तंत्र-मंत्र और जादू-टोने की कहानियां. इससे साहित्य का उद्देश्य भी पूरा नहीं होता और विज्ञान की कसौटी अधूरी ही रह जाती है.

इस आधार पर देखें तो देवसरे जी के बालउपन्यास खरे ही उतरते हैं. एकाध चूक को छोड़कर उन्होंने फंतासी और वैज्ञानिक परिकल्पना, आविष्कारों के बीच संगति बनाए रखी है. अंतरिक्ष यात्राओं के दौरान वे भारहीनता की स्थिति का न केवल उल्लेख करते हैं, बल्कि उसके लक्षणों को भी अभिव्यक्त करते हैं. वैज्ञानिक तथ्यों के प्रस्तुतिकरण के समय वे कथानक की रोचकता पर आंच नहीं आने देते. सीधी-सरल भाषा में वे इस प्रकार का कथानक रचते हैं कि बच्चे वहां पाठक न होकर संवादी बन जाते हैं. जो कभी अपने भीतर झांकते हुए खुद ही से संवाद करते हैं, तो कभी पात्रों के बीच घुल-मिल जाते हैं. दरअसल यही विज्ञान साहित्य का उद्देश्य भी हैं. यूं तो उनका हर उपन्यास रोचक, पठनीय और जिज्ञासा को विस्तार देने वाला है, लेकिन एक उनके वैज्ञानिक उपन्यास *लावेनी* का उल्लेख करना मैं जरूरी समझता हूं. इस उपन्यास में उनकी कल्पनाशीलता एवं किस्सागोई का अद्भुत मिश्रण है. 1981 में अजमेर से प्रकाशित कुल 52 पृष्ठ के इस उपन्यास के कथानक का ताना-बाना एक काल्पनिक ग्रह नीवा को लेकर बुना गया है. इस उपन्यासों में वे जिस प्रकार अंतरिक्ष के रहस्यों का पर्दाफाश करते हैं, धीरे-धीरे कथानक को विस्तार देते हैं, उससे यह पुस्तर विज्ञान उपन्यास के जासूसी कथानक का भी मजा देने लगती है.

देवसरे जी के बालउपन्यासों को जो चीज खास बनाती है वह है कथानक की रसात्मकता. अंतरिक्ष उनका सर्वाधिक प्रिय विषय रहा है, और शायद बच्चों का भी. चूंकि परीलोक की कल्पना निस्तब्ध निशाओं में विराट अंतरिक्ष को निहारते कल्पनाशील दिमागों की उपज हैं. इसलिए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्होंने अंतरिक्ष संबंधी शोधों को साहित्य का विषय बनाया. और कभी उड़नतश्तिरियों के माध्यम से, तो कभी ग्रह-उपग्रहों की यात्रा द्वारा, वे उसके रहस्यों को खंगालने में लगे ही रहते हैं. पठनीयता की दृष्टि से देखा जाए तो ये सभी उपन्यास खरे उतरते हैं. हालांकि कई स्थानों पर देवसरे जी का पत्रकार उनके लेखक पर हावी रहा है. वहां उपन्यास एक साइंस रिपोर्ताज बनकर रह जाता है. एकाध जगह जहां वे चूके हैं, वह बड़ी तथ्यात्मक भूल होने के बाद भी एक सामान्य सोच का हिस्सा है. अपने उपन्यास उड़ती तश्तरियां (पृष्ठ 56) में वे प्रकाशवर्ष को समय का मात्रक लिखकर इसी प्रकार की चूक कर बैठें हैं. दरअसल आमव्यक्ति प्रकाशवर्ष को आम व्यक्ति समय की इकाई मानता है. जबकि वह है दूरी का मात्रक.

उपन्यासों की पृष्ठ संख्या को देखकर लगता है कि वे लेखक द्वारा प्रकाशक की मांग पर, अथवा उसकी रुचि एवं प्रकाशन संबंधी प्राथमिकताओं को देखते हुए रचे गए हैं. इसीलिए उनकी पृष्ठ सीमा निश्चित है. प्राय सभी उपन्यास 20000-25000 शब्द सीमा को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं. बालउपन्यासों के लिए यह सीमा प्रकाशकों द्वारा निर्धारित भले ही हो, बालउपन्यास अपनी रोचकता एवं कथात्मकता से बंधा होता है, न कि ऐसी किसी सीमा से. लेखक जब प्रकाशक की मांग के अनुसार अपनी सृजनात्मकता को बांधने लगता है, तब उसका असर कहीं न कहीं रचना के सहज-स्वाभाविक विकास पर भी पड़ता ही है. इसके बावजूद हिंदी बालसाहित्य के क्षेत्र में देवसरे जी के अवदान को भुला पाना असंभव ही. जब भी हिंदी बालसाहित्य में मौलिकता, वैज्ञानिकता एवं समसामियकता का जिक्र होगा, देवसरे ही का उल्लेख वहां इतिहासपुरुष की तरह किया जाएगा. देखा जाए तो इसके वे अधिकारी भी हैं. उम्मीद की जानी चाहिए कि आने वाले वर्षों में वे हिंदी बालसाहित्य को एक-दो ऐसे उपन्यास अवश्य देंगे, जो शब्द-सीमा के प्रकाशकीय प्रतिबंधों से बाहर होंगे, जिनमें कथानक अपनी स्वाभाविक गति से प्रवाहमान होगा. रोचकता होगी ओर सरसता भी, जिसके लिए देवसरे जी के उपन्यासों की अलग पहचान है. ऐसे उपन्यासों को हम तो चाव से पढ़ेंगे ही, आगे आने वाली पीढ़ियां भी सहेजकर कर रखेंगी.

६६

opkaashyap@gmail.com
DRAFT : NOT FOR PUBLICATION

डा. हरिकृष्ण देवसरे के कुछ बालउपन्यास

वर्ष	उपन्यास/ कहानी संग्रह का नाम	प्रकाशक	उपन्यास/ कहानी	कथासार/टिप्पणी
1968	**खेल बच्चे का** 42 पृष्ठ, मूल्य 1.20 रुपये	ज्ञानोदय प्रकाशन रायपुर/इलाहाबाद	विज्ञान आधारित छोटी-छोटी कुल 09 कहानियां	आकाशवाणी भोपाल में कार्यरत देवसरे ने अपनी इस संभवतः सबसे पहली पुस्तक में वैज्ञानिक आविष्कारों से जुड़ी 09 कहानियां दी हैं. इनमें वैज्ञानिकों के बचपन के दौरान खेल-खेल में ली गई प्रेरणाओं के आधार पर सरल भाषा में कथानक बुना गया है. संभवतः सबसे पहली पुस्तक जिसने लेखक को विज्ञान के प्रति रुचि को प्रकट किया और उसको वैज्ञानिक बालसाहित्यकार के रूप में स्थापित करने में मदद की. पुस्तक में खेल लैंप का(लैंप को हिलते देख घड़ी के पेंडुलम की खोज की प्रेरणा, गैलीलिया) खेल केतली का—जेम्सवाट, खेल घोड़े का—मोशिए-दि-सिवरॉक, साईकिल आदि कुल नौ आविष्कारों के बारे में प्रारंभिक प्रेरणाओं के बारे में दिया गया है. पुस्तक अच्छी है, विशेषकर प्रकाशन वर्ष के आधार पर सराहनीय, दर्शाती है कि लेखक ने एक प्रतिबद्ध लेखक के रूप में बच्चों के लिए विज्ञान लेखन को अपनाया.
1969	**आओ चंदा के देश चलें** 88 पृष्ठ, मूल्य 1.80 रुपये	बाल बुक बैंक नई दिल्ली/मथुरा	वैज्ञानिक उपन्यास	चंद्रलोक की यात्रा को लेकर रोचक उपन्यास. मेजर राय के दो बेटे चंगू और मंगू अंतरिक्ष यान को लेकर चंद्रलोक की यात्रा पर निकल जाते हैं. उनकी अंतरिक्ष यात्रा का विवरण सहज-सरल भाषा, पठनीय, रोचकता से भरपूर.
1969	**मंगलग्रह में राजू** 88 पृष्ठ, मूल्य 1.80 रुपये	बाल बुक बैंक नई दिल्ली/मथुरा	वैज्ञानिक उपन्यास	उड़नतश्तरियों तथा अंतरिक्ष विज्ञान के जादुई संसार, मंगलग्रह तक ही यात्रा पर आधारित प्रमुख उपन्यास, रोचक तथा पठनीय.
1971	**उड़ती तश्तरियां*** 96 पृष्ठ, मूल्य 1.80 रुपये	बाल बुक बैंक नई दिल्ली/मथुरा	वैज्ञानिक उपन्यास	उड़नतश्तरियों के रहस्य तथा अंतरिक्ष विज्ञान के जादुई संसार का उद्घाटन करता बालउपन्यास, सूचना का दबाव रोचकता पर भारी पड़ता हुआ. प्रकाशवर्ष संबंधी गलत वैज्ञानिक तथ्य का निरूपण*
1981	**स्वान यात्रा** 44 पृष्ठ, मूल्य 7.00 रुपये	जयश्री प्रकाशन दिल्ली-110032	वैज्ञानिक उपन्यास	अंतरिक्ष स्वान ग्रह वासियों द्वारा वैज्ञानिक श्रीधरन का अपहरण, उड़नतश्तरियों के रहस्य, अंतरिक्ष में स्वानग्रह की परिकल्पना
1981	**लावेनी** 52 पृष्ठ, मूल्य 7.00 रुपये	मिश्रा ब्रदर्स अजमेर	वैज्ञानिक उपन्यास	उड़नतश्तरियों तथा अंतरिक्ष विज्ञान के जादुई संसार, नीवाग्रह की परिकल्पना, नीवा यात्रा पर आधारित प्रमुख उपन्यास, रोचक तथा पठनीय. बाकी सभी उपन्यासों में सर्वाधिक रोचक एवं पठनीय.
1983	**सोहराब रुस्तम** 40 पृष्ठ, मूल्य 6.00 रुपये	शकुन प्रकाशन नई दिल्ली	ऐतिहासिक उपन्यास	सोहराब एवं रुस्तम की बहादुरी एवं वीरता पर केंद्रित ऐतिहासिक उपन्यास, सहज-साधारण प्रस्तुति प्रकाशक की मांग पर लिखी गई रचनाएं प्रतीत होती हैं
1983	**आल्हा ऊदल** 40 पृष्ठ, मूल्य 6.00 रुपये	शकुन प्रकाशन नई दिल्ली	ऐतिहासिक उपन्यास	आल्हा ऊदल की वीरता पर केंद्रित ऐतिहासिक उपन्यास, सहज-साधारण प्रस्तुति. प्रकाशक की मांग पर लिखी गई रचनाएं प्रतीत होती हैं.
1983	**गिरना स्काइलैब का**	मीनाक्षी प्रकाशन	विविध कथा	विज्ञान, आडंबर, व्यंग्य, बालमनोविज्ञान, जासूसी पर आधारित

	40 पृष्ठ, मूल्य 7.50 रुपये	अजमेर, राजस्थान	संग्रह	रोचक बालकहानियों का संग्रह. कुल 08 कहानियां, चने का झाड़ अच्छी बालमनोविज्ञान पर आधारित कहानी. जिसमें राजू के माता-पिता घर में आने वाले हर व्यक्ति के आगे उसकी प्रशंसा करते हैं. इससे परेशान, उत्पीड़ित राजू एक दिन स्वयं उनका रहस्य खोल देता है. गिरना स्काइलैब का हास्य का पुट लिए रोचक कहानी. जंगल में स्काई लैब गिरने की अफवाह से अफरातफरी मच जाती है. जांच करने पर पता चलता है, कि जिसको स्काईलैव समझा जा रहा है वह तो शिकारी का मचान था. विश्वासघात वैज्ञानिक कथा भी रोचक.
1984	**डाकू का बेटा** 40 पृष्ठ, मूल्य 6.00 रुपये	सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-110007	डाकू समस्या पर आधारित लंबी कहानी/ उपन्यास	मध्य प्रदेश की डाकू समस्या पर आधारित एक रोचक एवं पठनीय उपन्यास. डाकू का बेटा होने के कारण चंदन को सब चिढ़ाते हैं. एक दिन चंदन डाकूओं के नाश का संकल्प लेकर अपने साथियों के साथ निकल जाता है. तथा अपने साहस एवं शौर्य के बल पर अपने पिता समेत डाकुओं का हृदय-परिवर्तन करने में कामयाब होता है. एक रोचकता से भरपूर बालउपन्यास जिसे लंबी कहानी भी कहा जा सकता है.
2003	**दूसरे ग्रहों के गुप्तचर** 40 पृष्ठ, मूल्य 30.00 रुपये	शकुन प्रकाशन नई दिल्ली	विज्ञान फंतासी	पठनीय विज्ञान फंतासी. मंगलग्रह से आए गुप्तचर जासूसी करने के लिए वैज्ञानिक प्रयोगशाला के निकट एक होटल का निर्माण करते है. जिन्हें राकेश और राजेश नामक दो मित्र मिलकर उनके षड्यंत्र का पर्दाफाश करते हैं. भाषा एवं कल्पनाशक्ति का बेहतर उपयोग.

*अब तक तो हम केवल चांद पर और मंगलग्रह के निकट ही पहुंच सके हैं. देखें ऐसे किसी ग्रह में पहुंचना कब तक संभव होता है, जो किसी अन्य सौरमंडल में हो. दरअसल ऐसे किसी ग्रह की यात्रा के लिए हमें जिस अंतरिक्षयान की आवश्यकता होगी, वह अभी तक नहीं बना. मान लो कोई ऐसा ग्रह हो जो हमसे 100 प्रकाशवर्ष की दूरी पर है, वहां हम जाने की तैयारी करें तो अभी तक हमने जो अधिकतम गति का जो यान बनाया है, उससे वहां तक पहुंचने में हमें लगभग *10 प्रकाशवर्ष* लगेंगे. जिसका अर्थ यह हुआ कि लौटने पर यह यात्रा कुल *20 प्रकाशवर्षों* की होगी. *ये बीस प्रकाशवर्ष हमारे 200 सालों के बराबर होगा.* इससे तो यही कहा जा सकता है कि जो आदमी ऐसी अतरिक्ष यात्रा पर जाएगा वह या तो घर वापस आ ही नहीं पाएगा और अगर आएगा भी तो उसके परिवार में तब तक कम से कम तीन पीढ़ियां गुजर चुकी होंगी. **पृष्ठ 56, उड़ती तश्तरियां, देवसरे**

दूसरे ग्रहों के गुप्तचर, मंगलग्रह में राजू, उड़ती तश्तरियां , आओ चंदा के देश चलें, स्वान यात्रा, लावेनी